THE HINDU

*Date: 08-08-25*

# Time for action

**The Reserve Bank of India did well to pause rate cuts amid the uncertainties**

**Editorials**

The Reserve Bank of India's (RBI) Monetary Policy Committee was sensible to pause its rate cuts, as announced on Wednesday. RBI Governor Sanjay Malhotra rightly pointed out that the uncertainties surrounding tariffs are still evolving, and that the 100 bps of rate cuts implemented since February 2025 are still percolating through the system. Mr. Malhotra's statement was made before U.S. President Donald Trump approved an additional 25% tariff on imports from India, over and above the exist ing 25% reciprocal tariffs. However, his assess. ment that the matter is far from over was never- theless accurate. India is still in the process of negotiating a Bilateral Trade Agreement with the U.S., and the final tariffs are far from decided. In the meantime, Mr. Trump has already indicated that similar additional tariffs - "penalties" for buying oil from Russia - may be imposed on other countries as well, which will impact India's comparative advantage. Leaving room for another rate cut later in the year when things might be clearer, thus, was the sensible thing to do. The other broad reason why the pause makes sense is that it allows the RBI to see whether such monetary measures are working. A 100 bps cumulative cut in rates over the last six months is significant, and the banking system needs time to pass that on to borrowers. The Governor also pointed out that there is ample liquidity in the system, which means the banks have the money to lend.

The question, however, is whether there is enough growth-related borrowing happening. RBI data show that, as of end-June, loans to purchase consumer durables had contracted about 3% compared to the previous year. Growth in housing loans slowed sharply to 9.6% from 36% a year earlier, while vehicle loans too slowed by five percentage points over the last year. In line with this subdued demand outlook, companies too seem to be slowing their borrowing. Loans to industry grew 5.5% in June 2025, down from 8.1% in June last year. Simply reducing rates, there- fore, is not enough and that is something the Governor alluded to when he said stronger policy frameworks "across domains, and not just limited to monetary policy", would be pivotal in achieving India's growth potential. The government has to intervene in a more focused manner than just increasing capital expenditure across the board. A lot can be done through tax. The Goods and Services Tax rate rationalisation, that was promised several times, is long overdue. A reduction in fuel prices in line with lower oil prices, too, will lift consumer sentiment. The RBI can, for the moment, afford to wait things out. The government does not have this luxury.

दैनिक भास्कर

***Date: 08-08-25***

# एक नई उत्पादन क्रांति का समय अब आ गया है

**संपादकीय**

भारत-अमेरिका व्यापार-सबंध आज जिस मुकाम पर हैं, उनमें हम न तो रूस से रिश्ते बदलेंगे, न ही अमेरिका का कृषि उत्पाद लेंगे। तब रास्ता एक ही है- एक नई उत्पादन क्रांति का आगाज हो। इसमें न केवल मैन्युफैक्चरिंग बल्कि कृषि और सेवा क्षेत्र भी हों। शासकीय और लोक अभियान के जरिए उद्यमिता को सभी बंधनों से मुक्त कर युवाओं को क्रैश कोर्स उपलब्ध कराएं ताकि चीन की तरह घर-घर में उद्योग लगें। अगर चीन के बल्ब, झालर, पंखे, मूर्ति, सेफ्टीपिन या टॉर्च हर भारतीय के घर पहुंच सकती हैं तो हम खुद इसे क्यूं नहीं बना सकते ? कृषि में अगर हम लगातार उत्पादन बढ़ा सकते हैं तो उसी लागत में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता भी बढ़ सकती है, यदि सही बीज, खाद, पानी, पेस्टिसाइड का इस्तेमाल हो। उत्पादकता बढ़ेगी तो वैश्विक बाजार में इन उत्पादों की मांग भी होगी। डब्ल्यूटीओ के प्रावधानों से मुक्त होकर किसानों को इसे अंजाम देने के लिए हरसंभव मदद दी जाए। कुछ वर्षों के लिए अधिक लागत वाले हाई-एंड इंफ्रास्ट्रक्चर पर निवेश रोककर मैन्युफैक्चरिंग और निर्यातोन्मुख कृषि पर ध्यान देना समय की जरूरत है। सेवा क्षेत्र, खासकर टेक्नोलोजी-चलित उपक्रमों में हमारे युवा किफायती और बेहतर हैं, लिहाजा अमेरिकी कंपनियां भारत का रुख करने को मजबूर होंगी। आईआईटी जैसी प्रथम श्रेणी की संस्थाओं को रिसर्च के लिए हर सुविधा से लैस करना भी अब जरूरी है।

दैनिक जागरण

***Date: 08-08-25***

# भारत की सामर्थ्य को समझे अमेरिका

**सृजनपाल सिंह, ( लेखक एपीजे अब्दुल कलाम सेंटर के सीईओ हैं )**

गत दिनों नासा - इसरो सिंथेटिक एपर्चर रडार सैटेलाइट ( निसार) को श्रीहरिकोटा के सतीश धवन स्पेस सेंटर से भारत के जीएसएलवी (जियोसिंक्रोनस सैटेलाइट लांच व्हीकल ) राकेट द्वारा अंतरिक्ष में भेजा गया। इस राकेट में स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन लगा है। निसार अब तक का सबसे महंगा नागरिक पृथ्वी इमेजिंग सैटेलाइट है। अमेरिका और भारत के विज्ञानियों द्वारा विकसित इस सैटेलाइट ने तकनीकी दृष्टि से नए मानक स्थापित किए हैं। यह पूरा घटनाक्रम विश्व स्तर पर भारत की बढ़ती अंतरिक्ष शक्ति का प्रतीक भी बना। नासा भी अपने अंतरिक्ष मिशन के लिए इसरो की मदद लेने लगा है। लगभग तीन दशक पहले तक इसी अमेरिका ने भारत को क्रायोजेनिक इंजन पाने से रोकने के लिए हरसंभव प्रयास किया था। भारत पर कड़े प्रतिबंध लगाए, अंतरराष्ट्रीय दबाव डाला। उसके इन प्रयासों का लक्ष्य केवल भारत को अंतरिक्ष की अग्रणी शक्ति बनने के रेस से बाहर रखना था। लगता है ट्रंप यह नहीं जानते कि भारत दबाव के आगे नहीं झुकता ।

कुछ दशक पहले इसरो ने पोलर सैटेलाइट लांच व्हीकल (पीएसएलवी) विकसित कर लिया था, जो लगभग 1,750 किलोग्राम वजन के उपग्रह को पृथ्वी की निचली कक्षा में 600-800 किमी की ऊंचाई तक ले जा सकता था। मगर पीएसएलवी की एक सीमा है। यह भारी उपग्रहों को जियो स्टेशनरी कक्षा तक नहीं पहुंचा सकता था, जो पृथ्वी की सतह से लगभग 36,000 किमी ऊपर होती है। यही वह कक्षा है, जहां अधिकांश संचार, मौसम और प्रसारण के उपग्रह काम करते हैं। वहां तक पहुंचने के लिए भारत को और अधिक ताकतवर राकेट की आवश्यकता थी। यह काम क्रायोजेनिक इंजन कर सकता था, पर उसका निर्माण अत्यधिक जटिल होता है। इस इंजन के मुख्य ईंधन तरल हाइड्रोजन को - 253 डिग्री सेल्सियस और तरल आक्सीजन को - 183 डिग्री सेल्सियस पर स्टोर करना होता है। इन्हें राकेट के भीतर स्थिर रखने और फिर उन्हें प्रज्वलित करने के लिए निपुण इंजीनियरिंग की आवश्यकता होती है। अत्यधिक ठंडे तापमान के कारण धातु की परतों में दरारें आ सकती हैं, वाल्व जाम हो सकते हैं और सील टूट सकती हैं। इसलिए सफल लांचिंग के लिए पूरी प्रणाली को सही दबाव और तापमान के तहत सटीक कार्य करना चाहिए।

क्रायोजेनिक इंजन के अभाव में भारत को महत्वपूर्ण अंतरिक्ष मिशनों के लिए विदेशी राकेटों पर निर्भर रहना पड़ता था । अंतरिक्ष क्षेत्र में पूर्ण आत्मनिर्भरता हासिल करने के लिए इसरो के पास दो विकल्प थे या तो इस तकनीक को स्वदेशी रूप से विकसित किया जाए या इसे विदेश से लिया जाए। जटिलता और तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए भारत ने पहले विदेश से इसे प्राप्त करने का प्रयास किया। उस समय विश्व में केवल अमेरिका, रूस, फ्रांस और जापान के पास क्रायोजेनिक इंजन थे। सबसे पहले जापान से बात की गई, लेकिन कोई रास्ता नहीं निकला। अमेरिका और यूरोप की कंपनियों के प्रस्ताव महंगे थे और उनमें तकनीकी हस्तांतरण भी शामिल नहीं था । यानी अगर इंजन में कोई समस्या होती, तो भारत को बार-बार अमेरिका और यूरोप की चौखट

पर दस्तक देनी पड़ती। इसलिए बात नहीं बनी। फिर एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। जनवरी 1991 में इसरो ने रूस की अंतरिक्ष कंपनी ग्लावकोस्मोस के साथ एक समझौता किया, जिसके तहत दो क्रायोजेनिक इंजन और पूरी तकनीक का हस्तांतरण प्रस्तावित हुआ, पर 1992 में अमेरिका ने इसरो और ग्लाकोस्मोस पर प्रतिबंध लगा दिए, जिससे सौदा अवरुद्ध हो गया। फिर दोनों देशों में एक संशोधित समझौता हुआ। इसमें सात पूरी तरह से असेंबल किए गए इंजन की आपूर्ति की अनुमति दी गई, पर इसके साथ कोई ब्लूप्रिंट, प्रशिक्षण या तकनीकी हस्तांतरण का प्रविधान नहीं किया गया। इन इंजनों ने भारत से जीएसएलवी कार्यक्रम की शुरुआती उड़ानों में मदद की, पर यह दीर्घकालिक भविष्य के लिए अपर्याप्त था। इस तकनीकी कमी को दूर करने के लिए पूर्व प्रधानमंत्री पीवी नरसिंह राव ने अप्रैल 1994 में स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन विकास कार्यक्रम की नींव रखी। भारत के इस निर्णय ने कई शक्तिशाली देशों को असहज किया।

1994 के अंत में इसरो के क्रायोजेनिक कार्यक्रम प्रमुख, नंबी नारायणन को साजिश के तहत जासूसी के झूठे आरोपों में गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बावजूद इसरो ने हार नहीं मानी। अंततः पांच जनवरी, 2014 को इसरो ने सफलतापूर्वक जीएसएलवी-डी 5 मिशन लांच किया, जिसमें सौ प्रतिशत स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन का उपयोग किया गया। यह एक मील का पत्थर था, जिसने विश्व समुदाय को अचरज में डाला। तब से भारत नियमित रूप से जीएसएलवी का उपयोग करके भारी उपग्रहों को कक्षा में स्थापित कर रहा है। भारत अब अन्य देशों के लिए एक विश्वसनीय लांच पार्टनर बन गया है। वही क्रायोजेनिक इंजन, जिसे दुनिया ने कभी साझा करने से मना कर दिया था, अब भारत की दृढ़ता का प्रतीक बन चुका है। अमेरिका ने हम पर प्रतिबंध, आक्षेप लगाए, हमारे लक्ष्यों को हमारी पहुंच से बाहर बताकर हमारा मखौल बनाया, लेकिन आज हमारा ग्राहक है। इसरो ने समय-समय पर इन पंक्तियों को चरितार्थ किया है, 'लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती, कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।'

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

***Date: 08-08-25***

# डिजिटल फर्जीवाड़े पर सक्षम नीति के लिए कदम

**नंदकुमार सरवदे, ( डीपस्ट्रैट के सह-संस्थापक एवं रिजर्व बैंक इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलजी प्राइवेट लिमिटेड के संस्थापक सीईओ हैं)**

**अजय शाह, ( एक्सकेडीआर फोरम में शोधकर्ता हैं )**

भारत में डिजिटल अर्थव्यवस्था का आकार बढ़ने और लोगों को लेनदेन में सहूलियत होने के साथ कई चुनौतियां भी सामने आई हैं। इनमें आपराधिक गतिविधियां बढ़ने से लेकर ऋण देने का दावा करने वाले अवैध मोबाइल ऐप्लिकेशन और 'डिजिटल अरेस्ट' जैसी वारदात शामिल हैं। अलग-अलग मामले कभी-कभी जांच एवं अभियोजन से हल हो जाते हैं मगर हमलावर रोज नए हथकंडे अपनाकर लोगों को चूना लगा रहे हैं। ऐसे मामलों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही है। एक तरफ खबरों के अनुसार डिजिटल माध्यम को हथियार बनाकर हुई आपराधिक गतिविधियों के कारण वर्ष 2024 में 36 लाख मामलों में 22,845 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है, वहीं लोक सभा में एक प्रश्न के उत्तर में बताया गया कि पिछले पांच वर्षों के दौरान डिजिटल भुगतान से जुड़े फर्जीवाड़े के कारण केवल 580 करोड़ रुपये का ही नुकसान हुआ है।

"आंकड़ों में यह अंतर स्पष्टता और फर्जीवाड़े की समस्या के उपयुक्त निदान के अभाव की तरफ इशारा कर रहा है। यह स्थिति इस समस्या की गंभीरता को पूरी तरह समाने आने नहीं देती है। इस स्थिति से निपटने के लिए सरकार को अधिक प्रयास करना होगा। हम राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास करने के बजाय समन्वित सरकारी प्रयासों पर निर्भर रहते हैं। डिजिटल फर्जीवाड़े के साथ भी यही बात लागू होती है। सुरक्षा अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ रॉस एंडरसन का कहना है कि इंटरनेट सुरक्षा के साथ सार्वजनिक हित का पहलू जुड़ा होता है। एक असुरक्षित मशीन दूसरों पर भारी पड़ सकती है।

मौजूदा उपाय केवल प्रतिक्रियात्मक होते हैं और उनमें तालमेल का सख्त अभाव होता है। नुकसान का ठीकरा मुख्य रूप से पीड़ित व्यक्ति पर फोड़ दिया जाता है। कोई व्यक्ति स्वयं अपने स्तर पर जो कुछ कर सकता है वह हमलावरों के शातिर दिमाग के आगे कहीं नहीं ठहरता है। पीड़ित व्यक्ति को वित्तीय एवं भावनात्मक असर का सामना स्वयं ही करना पड़ता है। नियामक शायद ऐसे मामलों को उतनी गंभीरता से नहीं ले पाते हैं और बैंक भी ग्राहकों को हेल्पलाइन पर शिकायत दर्ज कराने के लिए कह कर पल्ला झाड़ सकते हैं। कानून लागू करने वाली एजेंसियों के पास सीमित संसाधन उपलब्ध हैं ऐसे में उनके लिए इन मामलों पर अधिक ध्यान दे पाना मुश्किल हो सकता है। दूरसंचार कंपनियों की यहां महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है मगर वे भी कम प्रति उपभोक्ता औसत राजस्व (एआरपीयू) का हवाला देकर अपनी असमर्थता जाहिर कर सकती हैं।

इस तरह ये समस्याएं सरकार द्वारा विस्तृत विनियमों के माध्यम से उलझती चली जाएंगी। ऐसे विनियम जो निजी व्यक्तियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले उत्पादों और प्रक्रियाओं का ब्योरा बताते हैं। निजी क्षेत्र तो यही चाहता है क्योंकि वह यह कहकर पल्ला झाड़ लेगा कि यूपीआई फर्जीवाड़ा सरकार की लापरवाही का नतीजा है। मगर केंद्रीय नियोजन प्रणाली आर्थिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करने लगती है। केंद्रीय नियोजन भी साइबर सुरक्षा सुनिश्चित करने का एक कमजोर तरीका है। साइबर सुरक्षा एक एकल, सख्त सरकार द्वारा तैयार सुरक्षा प्रणाली

के लिए काफी पेचीदा है। हमारी नजर में इस समस्या का हल निकालने के लिए तीन बिंदुओं पर काम किया जा सकता है।

### पहला घटक: नुकसान साझा करने पर स्पष्टता

नुकसान पर स्थिति स्पष्ट करना एक प्रमुख कदम है। जब पीड़ित व्यक्ति को स्वयं नुकसान का वहन करना पड़ता है तो दूसरे पक्ष तंत्रगत प्रणाली की खामियां सुधारने में अधिक दिलचस्पी नहीं लेते हैं। इस नजरिये में बदलाव की जरूरत है। कंपनियां यह समझने की बेहतर स्थिति में होती हैं कि आने वाले समय में किस तरह के जोखिम पेश आ सकते हैं। वे अच्छी तरह समझ सकती हैं कि सुरक्षा किस तरह पुख्ता की जाएगी और उसी अनुसार वे अपनी योजनाओं एवं प्रक्रियाओं में बदलाव कर सकती हैं। मगर इसके लिए कंपनियों को फर्जीवाड़ा होने की स्थिति में नुकसान का सामना करना होगा।

ग्राहकों की जवाबदेही कम करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) का ढांचा सही दिशा में उठाया गया कदम है मगर इससे जुड़ी पेचीदा बातें और खुद को निर्दोष साबित करने की जिम्मेदारी ग्राहकों की होने से केंद्रीय बैंक का यह प्रयास बौना साबित हो जाता है। हमें सिंगापुर और ब्रिटेन की तरह कंपनी केंद्रित प्रारूपों पर विचार करना चाहिए। सिंगापुर में फर्जीवाड़े पर अंकुश लगाने के लिए की गई व्यवस्था इसका एक उदाहरण है। वहां सबसे पहले जवाबदेही उस इकाई को सौंपी जाती है जो समस्या से निपटने में सबसे अधिक सक्षम हो। वित्तीय सेवा प्रदाता (एफएसपी) प्राथमिक संरक्षक है और अगर वह अपने उत्तरदायित्व के निर्वहन में विफल रहता है वह अपनी तरफ से हर्जाना देता है। अगर एफएसपी अपने उत्तरदायित्व का पालन उपयुक्त ढंग से करता है तो जवाबदेही संबंधित दूरसंचार कंपनी की हो जाती है। यह ढांचा सभी कंपनियों को सतर्क रहने के लिए प्रोत्साहित करता है।

फर्जीवाड़ा रोकने के लिए ब्रिटेन में शुरू ऑथराइज्ड पुश पेमेंट (एपीपी) व्यवस्था में रकम प्राप्त करने वाले और भेजने वाले सेवा प्रदाताओं (पीएसपी) के बीच रीइंबर्समेंट आधा-आधा बांटने का प्रावधान है। इससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती है कि पीड़ित व्यक्ति को बिना किसी देरी के रकम मिल जाए और संबंधित लेनदेन से जुड़े दोनों पक्ष सक्रिय रहे। यह व्यवस्था बैंकों को भी वास्तविक समय में आने वाली जानकारियों की मदद से फर्जीवाड़े का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

### दूसरा बिंदुः समन्वित कदम

दूसरा बिंदु भारतीय शासन व्यवस्था के अंदर बिखराव को दूर करना है। डिजिटल फर्जीवाड़े के मामले सीधे तौर पर आर्थिक इकाइयों (आरबीआई, डीईए), ऑनलाइन तंत्र (ट्राई, दूरसंचार कंपनियां एवं अन्य प्लेटफॉर्म ) और सुरक्षा ताना-बाना (पुलिस, साइबर प्रकोष्ठ ) से जुड़ जाते हैं। मगर उनके बीच काफी कम समन्वय रहता है।

एक सुव्यवस्थित कदम में स्पष्ट कार्य आवंटन और सहयोग की अहम भूमिका होगी। इससे हितधारकों को वास्तविक समय में जानकारी साझा करने, खतरों की पहचान करने के लिए विश्लेषण तैयार करने और समन्वित और लक्षित कानून लागू करने से जुड़े प्रयास शुरू करने में मदद मिलेगी। एक ऐसे स्पष्ट, सहयो- गात्मक ढांचे की आवश्यकता महसूस की जा रही है जिसमें भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को उचित तरीके परिभाषित किया जाए और इनमें तालमेल स्थापित किया गया हो ।

जिम्मेदारियों के स्पष्ट विभाजन के बिना देश के विभिन्न तंत्र प्रभावी ढंग से एक दूसरे के साथ खुफिया जानकारी साझा नहीं कर सकते हैं और नियामक किसी नए खतरे के पैमाने या प्रकृति को सटीक रूप से नहीं माप सकते हैं। बेंगलूरु में धोखाधड़ी के प्रकार पर उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि समस्या का एक बड़ा हिस्सा 'निवेश धोखाधड़ी' और 'डिजिटल अरेस्ट' से जुड़ा है यह सिर्फ कार्ड या ओटीपी की समस्या नहीं है। यहां मुख्य समस्या भेजने और प्राप्त करने वाले संस्थानों में भुगतान खातों में होने वाले लेनदेन से जुड़ी है। परिभाषाओं को मानकीकृत और तौर-तरीकों पर जानकारी साझा कर हम एक ऐसी सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था तैयार कर सकते हैं जो किसी भी व्यक्तिगत प्रयास से अधिक मजबूत हो।

### आगे का रास्ता: एक विशेषज्ञ समूह

इस समस्या से निपटने के लिए डिजिटल धोखाधड़ी पर एक राष्ट्रीय रणनीति बनाने के लिए एक विशेषज्ञ समूह स्थापित करने का प्रस्ताव दिया जा सकता है। यह समूह वित्तीय विनियमन, सुरक्षा अर्थशास्त्र, साइबर सुरक्षा, सार्वजनिक संचार और भारतीय वित्तीय और सुरक्षा प्रणालियों की समझ से जुड़े सभी प्रकार के हुनर को एक जगह लाएगा। इस डिजिटल धोखाधड़ी से लड़ने में सरकार द्वारा एक समन्वित दृष्टिकोण की बुनियाद तैयार की जानी चाहिए। इसके उद्देश्यों में तीन बातों पर ध्यान दिया जा सकता है। सबसे पहले एक स्पष्ट वर्गीकरण, डेटा साझा करने से जुड़ी प्रक्रिया और आवश्यक कानूनी और संग- ठनात्मक परिवर्तनों सहित एक राष्ट्रीय नीति परिभाषित की जा सकती है। दूसरे पहलू के अंतर्गत आर्थिक और सुरक्षा से जुड़े पहलुओं के बीच समन्वय तंत्र तैयार कर उनके बीच उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से साझा किए जा सकते हैं। तीसरे पहलू के तौर पर अगले दो वर्षों के लिए विशिष्ट समय-सीमा और लक्ष्य के साथ साथ एक योजना तैयार की जा सकती है।

---

जनसत्ता

***Date: 08-08-25***

# सहकार से समृद्धि के समांतर चुनौतियां

**अजय जोशी**

दुनिया भर में वर्ष 2025 को अंतरराष्ट्रीय सहकारिता वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। इस वर्ष का विषय है- सहकारिता एक बेहतर दुनिया का निर्माण करती है। संयुक्त राष्ट्र ने सहकारिता वर्ष के लिए जो विषय लिया, वह भारत सरकार के 'सहकार से समृद्धि' के दृष्टिकोण के अनुरूप है। भारत में सहकारी समितियों की अच्छी खासी संख्या है। ग्यारह दिसंबर, 2024 को राज्यसभा में एक प्रश्न के लिखित उत्तर में सहकारिता मंत्री ने बताया था कि देश में कुल 6,21,514 सहकारी समितियां हैं समितियों का यह तंत्र भारत के सामाजिक आर्थिक ढांचे में सहकारिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका को प्रदर्शित करता है सबसे अधिक कार्यरत सहकारी समितियों वाला राज्य महाराष्ट्र है, सहकारी आंकड़ों के अनुसार यहां सहकारी संस्थाएं दो लाख से अधिक हैं। इन समितियों से जुड़े 7,96,65,337 लोगों के साथ इसका सदस्यता आधार भी सबसे बड़ा है। महाराष्ट्र में इतनी कार्यरत समितियां सहकारी आंदोलनों विशेष रूप से कृषि, डेयरी और ग्रामीण बैंकिंग जैसे क्षेत्रों में मजबूत संगठनात्मक ढांचे को दर्शाती हैं।

गुजरात की सहकारी संस्था 'अमूल' अपनी सफलता की कहानियों के लिए प्रसिद्ध है। उसने डेयरी उद्योग में नए मानक स्थापित किए हैं। राज्य की सहकारी पहलों ने किसानों, लघु उत्पादकों और ग्रामीण समुदायों को सशक्त बनाने में अहम योगदान दिया है। कर्नाटक 38,828 सहकारी समितियों और 2,36,76,736 लोगों की सदस्यता के साथ समितियों की संख्या के मामले में तीसरे स्थान पर है। कर्नाटक में सहकारी क्षेत्र विविध है, जिसमें ऋण समितियां, कृषि विपणन और कृषि उपज का प्रसंस्करण शामिल है। इसने राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के साथ-साथ स्थायी आजीविका के अवसर प्रदान करने में भी सहायता की है।

इसी तरह केरल में 7,076 कार्यशील सहकारी समितियां हैं और 2,94,72,329 व्यक्तियों की सदस्यता है। यह आंकड़ा राज्य में सहकारी समितियों की दक्षता और व्यापक पहुंच को दर्शाता है। केरल का सहकारिता माडल समावेशी विकास पर केंद्रित है और यह क्रेडिट यूनियनों, उपभोक्ता सहकारी समितियों तथा आवास समितियों के जरिए कल्याणकारी गतिविधियों को संचालित करता है। उत्तर प्रदेश में भी सहकारी संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति है, जहां 19,587 समितियों के साथ 1,86,72,654 सदस्य जुड़े हुए हैं। ये समितियां इस घनी आबादी वाले राज्य में ग्रामीण और कृषि विकास के लिए संसाधन जुटाने में अहम भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। बिहार में 16,475 समितियां 1,53,81,807 सदस्यों के साथ सहकारी उपक्रमों में ग्रामीण आबादी की सक्रिय भागीदारी दर्शाती हैं।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तथा लक्षद्वीप जैसे छोटे राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में सहकारी समितियों की संख्या कम है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में 1,210 कार्यरत सहकारी समितियां हैं, जिनके 73,182 सदस्य हैं। जबकि लक्षद्वीप में 30 समितियां हैं, जिनके 79,091 सदस्य हैं। अपने छोटे आकार के बावजूद ये सहकारी समितियां इन क्षेत्रों की विशिष्ट आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेष रूप से ऋण तक पहुंच प्रदान करने और स्थानीय आजीविका को सहारा देने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य

कर रही हैं। कुल मिला कर भारत में सहकारी क्षेत्र अपनी पहुंच और प्रभाव में विविधता प्रदर्शित करता है। देश भर में सहकारी समितियों का यह व्यापक संजाल समुदायों को सशक्त बनाने, आर्थिक समावेशन को बढ़ावा देने तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अहम योगदान देने में उनकी भूमिका को रेखांकित करता है। सहकारी समितियां जन केंद्रित उद्यम हैं, जिनका स्वामित्व, नियंत्रण और संचालन उनके सदस्यों द्वारा उनकी साझा आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए किया जाता है।

हालांकि, देश भर में फैली सहकारी समितियां सरकार के 'सहकार से समृद्धि' के लक्ष्य को पूरा करने की दृष्टि से उतनी सफलता प्राप्त नहीं कर पा रही हैं, जितना अपेक्षित है। इसका कारण उनके सामने कई चुनौतियां हैं। अधिकांश सहकारी समितियां अपनी पारदर्शिता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की कमी की चुनौतियों से जूझ रही हैं। कार्य संचालन में सदस्यों की सीमित भागीदारी, हाशिये पर पड़े समुदायों का अपर्याप्त प्रतिनिधित्व तथा कुछ व्यक्तियों के पास सत्ता का केंद्रीयकरण सहकारी समितियों की समावेशी प्रकृति को कमजोर करता है। हाशिये पर पड़े समुदायों की सेवा करने वाली समितियों को वित्तीय संसाधनों तक पहुंचने में कई कठिनाइयों का सामना पड़ता है। उनके पास अक्सर पारंपरिक वित्तीय संस्थानों द्वारा अपेक्षित आवश्यक सूचनाओं और दस्तावेजों की कमी रहती है, जिससे उनके लिए ऋण प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। इनके लिए आधारभूत संरचना की कमी भी उनकी दक्षता तथा प्रभावशीलता को प्रभावित करती है, जिससे उनकी पहुंच सीमित हो जाती है।

वित्तीय सेवाएं देने वाले सहकारी बैंक और सहकारी समितियों के लेन- देन में भ्रष्टाचार और उनके संचालन संबंधी दिक्कतों के कारण आम जमाकर्ता का पैसा या तो डूब जाता है या अटक जाता है। इस कारण जमाकर्ताओं का बैंकिंग कार्य करने वाली सहकारी समितियों से लोगों का विश्वास खत्म होने लगता है। इससे भी सहकारी समितियों की साख पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जो सहकारी संस्थाएं निर्माण कार्य में लगी हुई हैं, वे बड़ी कंपनियों द्वारा उत्पादित माल से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पातीं, क्योंकि उनके उत्पादों और सेवाओं की गुणवत्ता बड़ी कंपनियों के उत्पादों या सेवाओं की तुलना में कमजोर रह जाती हैं। इस कारण भी ये सहकारी संस्थाएं पिछड़ जाती हैं। बड़ी कंपनियों के लुभावने विज्ञापन और विपणन अभियान के कारण भी सहकारी संस्थाएं पीछे रह जाती हैं। दूरदराज के क्षेत्रों में कार्यरत समितियों के उत्पाद को विक्रय स्थल तक लाने-ले जाने के लिए परिवहन की कमी का भी सामना करना पड़ता है। कुछ सहकारी संस्थाओं के पदाधिकारियों का भ्रष्टाचार इन संस्थाओं के विकास और उनकी जन सहभागिता को प्रभावित करता है।

सहकार से समृद्धि के दृष्टिकोण के अनुरूप सहकारिता को लागू करने के लिए सहकारी समितियों का नियमित आडिट होना और सहकारी संस्थाओं में निर्णय लेने की प्रक्रिया में सदस्यों की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करना जरूरी है। हाशिये पर छूट गए समुदायों की जरूरतों को पूरा करने की दृष्टि से उनकी सहभागिता भी आवश्यक है। सहकारी समितियों को अन्य नए तरीके से वित्तपोषण के प्रयासों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

सदस्यों को शिक्षित करने और उनको आकर्षित करने के लिए ऐसे कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए, जो उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं तथा चुनौतियों का समाधान करने में सहायक हों।

ग्रामीण बुनियादी ढांचे के विकास के लिए और अधिक सरकारी निवेश, सहकारी समितियों के लिए संचार व्यवस्था और बाजारों तक पहुंच के लिए संसाधनों का विकास किया जाना आवश्यक है। सहकारी संस्थाओं के सदस्यों और प्रबंधकों के लिए कौशल निर्माण कार्यशालाओं का आयोजन प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा किया जाना चाहिए। संभावित सदस्यों को सहकारी समितियों के लाभों और सिद्धांतों के बारे में शिक्षित करने के लिए स्थानीय भाषाओं में जागरूकता अभियान की जरूरत | अगर केंद्र और राज्य सरकारें तथा सभी संबंधित पक्षकार मिल-जुल कर प्रयास करें तो सहकारिता को और ज्यादा मजबूत बनाया जा सकता है, जिससे अर्थव्यवस्था में उसका योगदान भी बढ़ेगा।

---

राष्ट्रीय सहारा

***Date: 08-08-25***

# कानून या विशेषाधिकार !

**रजनीश कपूर**

भारत में कानून की समानता का सिद्धांत संविधान का एक आधारभूत तत्व है। संविधान का अनुच्छेद 14 स्पष्ट कहता है कि कानून के समक्ष सभी समान हैं। लेकिन जब हम समाज के प्रभावशाली और ताकतवर लोगों का व्यवहार देखते हैं तो यह सिद्धांत कई बार मजाक बन कर रह जाता है। डेरा सच्चा सौदा के प्रमुख गुरमीत राम रहीम का मामला इसका जीवंत उदाहरण है, जहां बार-बार दी जाने वाली पैरोल और फरलो ने न केवल कानूनी व्यवस्था पर सवाल उठाए हैं, बल्कि आम जनता के विश्वास को भी हिला कर रख दिया है। गुरमीत राम रहीम को 2017 में दो साध्वियों के साथ रेप के मामले में 20 साल की सजा सुनाई गई थी और बाद में पत्रकार रामचंद्र छत्रपति और डेरा के पूर्व प्रबंधक रंजीत सिंह की हत्या के लिए आजीवन कारावास की सजा मिली थी।

पिछले कुछ वर्षों में ये बार-बार जेल से बाहर निकले हैं। 2020-25 तक उन्हें कम से कम 14 बार पैरोल या फरलो दी गई है, जिसमें कुल मिला कर 326 दिन जेल के बाहर बिताए गए हैं। हाल में अगस्त, 2025 में उन्हें 40 दिन की पैरोल दी गई जो उनकी सजा के सात साल के भीतर उनकी तीसरी रिहाई थी। यह पैटर्न न केवल

कानूनी प्रक्रिया पर सवाल उठाता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कैसे रसूखदार लोग कानून को अपने पक्ष में मोड़ लेते हैं। पैरोल और फरलो का प्रावधान हरियाणा गुड कंडक्ट प्रिजनर्स (टेम्परेरी रिलीज) एक्ट 2022 के तहत किया गया है। इस कानून के अनुसार, एक साल की सजा पूरी करने के बाद कोई भी कैदी प्रतिवर्ष 10 सप्ताह की पैरोल और 21 दिन की फरलो का हकदार है। फरलो को कैदी का अधिकार माना जाता है, जो सामाजिक पारिवारिक संबंध बनाए रखने के लिए दी जाती है, जबकि पैरोल के लिए विशिष्ट कारणों की आवश्यकता होती है। लेकिन राम रहीम के मामले में ये रिहाइयां अक्सर बिना किसी ठोस कारण के दी गई हैं।

राम रहीम का डेरा सच्चा सौदा हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, दिल्ली जैसे राज्यों में लाखों अनुयायियों के साथ एक प्रभावशाली संगठन है। अनुमान के अनुसार, डेरे के 90-95 लाख अनुयायी हैं, जो किसी भी राजनीतिक दल के लिए एक बड़ा वोट बैंक हो सकते हैं। 2022 में पंजाब विधानसभा चुनाव, 2023 में राजस्थान विधानसभा चुनाव और 2024 में हरियाणा विधानसभा चुनाव से पहले उनकी रिहाई ने राजनीतिक प्रभाव की आशंकाओं को बल दिया है।

सवाल उठता है कि क्या ये रिहाइयां कानूनी प्रक्रिया का हिस्सा हैं, या राजनीतिक लाभ के लिए सुनियोजित कदम? हरियाणा के जेल मंत्री रंजीत सिंह चौटाला और अन्य नेताओं ने दावा किया है कि राम रहीम को दी गईं रिहाइयां कानून के दायरे में हैं, और अन्य कैदियों को भी ऐसी सुविधाएं दी जाती हैं। लेकिन 2023 के सरकारी आंकड़ों के अनुसार, हरियाणा की जेलों में 5,832 कैदियों में से 2,801 को ही अस्थायी रिहाई मिली थी। सवाल उठता है कि क्या सभी कैदियों को इतनी बार और इतने लंबे समय के लिए रिहाई दी जाती है, जितनी राम रहीम को दी गई हैं? शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति (एसजीपीसी) ने उनकी लगातार रिहाइयों के खिलाफ पंजाब एंड हरियाणा हाई कोर्ट में याचिका दायर की थी, लेकिन कोर्ट ने इसे खारिज कर दिया। यह कहते हुए कि रिहाई का निर्णय कानूनी ढांचे के भीतर लिया गया है। लेकिन यह तर्क उस धारणा को कमजोर करता है कि कानून सबके लिए समान है । पत्रकार रामचंद्र छत्रपति के बेटे अंशुल छत्रपति ने इसे 'कानून का मजाक' करार दिया है। कहते हैं कि अगर कोई कैदी हर साल 90 दिन जेल से बाहर रह सकता है, तो सजा का क्या अर्थ रह जाता है ?

राम रहीम की रिहाइयों का प्रभाव केवल कानूनी नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिक भी है। उनकी सजा के बाद 2017 हरियाणा और पंजाब में हुई हिंसा में 40 लोगों की मौत हुई थी और करोड़ों की संपत्ति का नुकसान हुआ था। ऐसे व्यक्ति को बार-बार रिहा करना न केवल पीड़ित परिवारों के लिए अपमानजनक है, बल्कि उन गवाहों के लिए भी खतरा पैदा करता है जो अभी भी उनके खिलाफ लंबित मामलों में गवाह हैं। सिरसा आश्रम में नपुंसकता मामले में अभी मुकदमा चल रहा है, और उनकी मौजूदगी गवाहों पर दबाव डाल सकती है। यह मामला एक व्यक्ति की कहानी भर नहीं है, बल्कि ऐसी व्यवस्था की कमजोरी उजागर करता है, जहां सत्ता और प्रभाव कानून के ऊपर हावी हो जाते हैं।

पैरोल और फरलो जैसे प्रावधानों का उद्देश्य कैदियों के पुनर्वास और सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देना है, लेकिन जब इनका दुरुपयोग विशिष्ट लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए किया जाता है, तो यह पूरी प्रणाली की विश्वसनीयता को कमजोर करता है। इस समस्या के समाधान के लिए राजनीतिक प्रभाव को कम करने के लिए चुनाव के समय में ऐसी रिहाइयों पर रोक लगाने जैसे उपाय किए जा सकते हैं। समय की मांग है कि हमारी कानूनी व्यवस्था इस तरह के दुरुपयोग को रोकने के लिए कठोर कदम उठाए ताकि कानून की गरिमा और विश्वसनीयता बरकरार रहे।

---

Live हिन्दुस्तान .com

***Date: 08-08-25***

# हम टैरिफ आपदा को अवसर बना लें

**अरुण कुमार, ( वरिष्ठ अर्थशास्त्री )**

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप जब तक अपनी शर्तों पर व्यापार समझौता नहीं कर लेते, तब तक वह टैरिफ से दबाव बनाते रहते हैं। कनाडा इसका बड़ा उदाहरण है, जिस पर पहले से लागू 25 फीसदी शुल्क को बढ़ाकर 35 प्रतिशत कर दिया गया है। यूरोपीय संघ ऐसे ही दबाव में घुटने टेक चुका है। लिहाजा, भारत पर कुल 50 फीसदी टैरिफ लगाने के फैसले को इसी नजरिये से देखना उचित होगा ।

इसका वस्त्र, रत्न व आभूषण, ऑटो पार्ट्स, सी फूड जैसे कई भारतीय निर्यातों पर असर पड़ेगा और अमेरिकी बाजार में इनकी आवक कम हो सकती है। हम चाहकर भी अपने दाम कम नहीं कर सकते, क्योंकि हमारा मुनाफा कम है। बमुश्किल चार-पांच प्रतिशत कटौती ही इनके मूल्यों में की जा सकेगी। ऐसे में, हमारी प्रतिस्पद्धी कंपनियों (जिनका टैरिफ हम से कम होगा) को इसका लाभ मिलेगा। जाहिर है, यह पूंजीवाद का 'क्रूर चेहरा' है । 1995 में जब विश्व व्यापार संगठन का गठन किया गया था, तब आपसी सहमति से 'गिव ऐंड टेक', यानी लेन-देन वाली व्यवस्था चुनी गई थी। इसमें विकसित देशों को जहां अपनी तरक्की व उच्च तकनीक का फायदा मिल रहा था, वहीं विकासशील या अल्प- विकसित देशों को अपने विकास के लिए कुछ रियायतें दी गई थीं। मगर लगता है, राष्ट्रपति ट्रंप इस व्यवस्था को बदलने के इच्छुक हैं।

हालांकि, इस टैरिफ नीति के खिलाफ शुरुआत में चीन की अगुवाई में यूरोपीय संघ, भारत, दक्षिण-पश्चिम एशियाई देशों ने एकजुटता दिखाने की कोशिश की थी, लेकिन यह दो वजहों से परवान नहीं चढ़ सकी। पहली, ट्रंप ने

इनकी एकता तोड़कर हर देश से अलग-अलग समझौता करने की नीति अपनाई । और दूसरी, चीन की सदारत किसी को पसंद नहीं आई, क्योंकि आशंका यह थी कि बीजिंग अपने उत्पाद इन देशों के बाजार में तो खपा लेगा, लेकिन उसके बाजार में अन्य मुल्कों को उतनी सुविधा नहीं मिल सकेगी।

सवाल है कि अब हमें क्या करना चाहिए? एक उपाय तो यही है कि हमें अमेरिका से इतर अपने बाजार का विस्तार करना चाहिए और जिन-जिन देशों से व्यापार समझौते हो सकते हैं, उनसे करने चाहिए। पिछले दिनों ब्रिटेन के साथ हमने मुक्त व्यापार समझौता किया है, जिसमें निर्यात योग्य करीब 99 फीसदी भारतीय उत्पाद शुल्क मुक्त कर दिए गए हैं। दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों के साथ भी हमने इसी तरह का मुक्त व्यापार समझौता किया है। मगर प्रौद्योगिकी के मामले में तुलनात्मक रूप से कमजोर होने के कारण हमें इसमें मनमाफिक फायदा नहीं मिल सका है। इसलिए, नई-नई प्रौद्योगिकी को अपनाने पर हमें ध्यान देना होगा।

दूसरा उपाय घरेलू बाजार के विस्तार में छिपा है। अभी हमारी अर्थव्यवस्था निर्यात पर ज्यादा निर्भर है। ऐसा इसलिए, क्योंकि हमारी क्रय शक्ति कम है। ब्ल्यूम वेंचर्स की रिपोर्ट बताती है कि करीब एक अरब लोगों की इतनी आमदनी भी नहीं कि वे जरूरत के बजाय इच्छा से चीजें खरीद सकें। अगर लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाने के उपाय किए जाएं, तो हमारा घरेलू बाजार इतना बड़ा हो सकता है कि हमारी बहुत ज्यादा निर्भरता निर्यात पर नहीं रहेगी।

लोगों की क्रय शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें रोजगार के बेहतर अवसर मुहैया कराने होंगे। यह काम सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों या बड़ी कंपनियों के भरोसे नहीं हो सकता- 6,000 के करीब बड़ी और 50,000 के लगभग मध्यम कंपनियां इस मामले में बहुत कारगर साबित नहीं हो सकतीं। बेशक इनमें उत्पादन बढ़ रहा है, लेकिन रोजगार में कटौती हो रही है। इसे यूं समझिए कि मारुति पहले 58 सेकंड में एक कार तैयार करती थी, जिसमें 10 रोबोट व 10 श्रमिकों का श्रम लगा होता था । अब (एआई के विस्तार से पहले) यह समय घटकर 38 सेकंड हो चुका है, जिसमें 20 रोबोट और पांच लोग काम करते हैं। मशीनीकरण ने वहां रोजगार घटाए हैं। लिहाजा, लघु व सूक्ष्म उद्योगों से ही अधिक उम्मीदें हैं।

फिलहाल माइक्रो सेक्टर में 11.5 करोड़ लोग काम कर रहे हैं और एक इकाई औसतन 1.7 लोगों को रोजगार दे रही है। हमें इस क्षेत्र को बढ़ाने के लिए तीन उपाय करने होंगे - बाजार देना होगा, वित्त पोषण करना होगा और प्रौद्योगिकी उपलब्ध करानी होगी। बाजार और वित्त पोषण के लिए एक उपाय यह हो सकता है कि इसमें सहकारी व्यवस्था लागू की जाए। मसलन, भदोही में कालीन की कोऑपरेटिव बनाई जाए, तो खुर्जा में सिरेमिक (मिट्टी के बर्तन आदि) की। अलीगढ़ में ताले और पीतल की सहकारी समितियां बनाई जा सकती हैं। इसी तरह के प्रयोग देश के अन्य इलाकों में भी किए जा सकते हैं। प्रौद्योगिकी के लिए सरकारों को अपने तई अतिरिक्त प्रयास करने होंगे। इसी तरह, पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में या रीसाइकिल (पुनर्चक्रण) के कामों में सरकारी मदद बढ़ाने की जरूरत है, ताकि इन क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाए जा सकें। बेशक, कृषि सबसे अधिक रोजगार देने वाला क्षेत्र है, जिसमें 46 फीसदी श्रम वर्ग लगा हुआ है, लेकिन मशीनीकरण के बढ़ने से यहां भी नया रोजगार पैदा करना

काफी मुश्किल हो गया है। यहां हम अधिक से अधिक, नई प्रौद्योगिकी को खेतों तक पहुंचाने की व्यवस्था कर सकते हैं।

इसी तरह, शिक्षा और स्वास्थ्य के मद में खर्च बढ़ाना होगा। अभी हमारे देश में शिक्षकों और डॉक्टरों की संख्या कम है। प्राथमिक विद्यालयों में प्रति 26 छात्र और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में प्रति 27 छात्र पर एक शिक्षक कार्यरत है। इसी तरह, 811 लोगों पर एक डॉक्टर उपलब्ध है। इस औसत में सुधार करने होंगे। इसके लिए रिक्त पदों पर भर्ती होनी चाहिए। ग्रामीण विकास के लिए हमें रोजगार गारंटी योजना के तहत काम बढ़ाने चाहिए। रिजर्व बैंक कहता है कि इस योजना के तहत महज 50 दिनों का काम मिल पाता है। लिहाजा, जल संरक्षण, सिंचाई, भूमिविकास, बाढ़ नियंत्रण, ग्राम पंचायत के सार्वजनिक भवनों के निर्माण जैसे काम इस योजना के अंतर्गत बढ़ाए जा सकते हैं, जिनमें मशीनों का कम से कम इस्तेमाल हो । आकलन यह भी है कि अगर 28 करोड़ लोगों को, जो आंशिक रूप से रोजगार में हैं या बेरोजगार हैं, काम मिल जाए, तो हमारी जीडीपी में 16 प्रतिशत का सुधार होगा।

साफ है, इस टैरिफ - आपदा को हम एक अवसर बना सकते हैं, जिसके लिए हमें कुछ नीतिगत प्रयास करने होंगे और मजबूत इच्छाशक्ति दिखानी होगी। अपने बाजार को एक ढाल के रूप में राष्ट्रपति ट्रंप पेश कर रहे हैं। हमें भी अपने घरेलू बाजार को इतना मजबूत बनाना होगा कि अपने उत्पादों को खपाने के लिए अन्य देशों की जरूरत कम पड़े।